छठा अध्याय

उपसंहार

इक्कीसवीं सदी में सामाजिक न्याय की अवधारणा के अंतर्गत समाज में सभी मनुष्यों को समान रूप से जीवन जीने और अपना विकास करने के अवसर प्रदान किए गए है। सामाजिक न्याय में किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति, लिंग, धर्म व संप्रदाय के आधार पर व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं किया जाता है। हमारे देश में आर्थिक व ऐतिहासिक कारणों से अन्याय के शिकार दलित, स्त्रियां, आदिवासी, अल्पसंख्यक तथा वे तमाम गरीब व पिछड़े हुए लोग जो सामाजिक न्याय से वंचित है। इक्कीसवीं सदी जो सूचना प्रौद्योगिकी के रूप में हमारी जिन्दगी में प्रवेश कर चुकी है। भूमण्डलीकरण व वैश्वीकरण के विकास के माध्यम से वर्तमान लोगों की आबादी अन्याय से जूझ रही है। वर्तमान में सामाजिक न्याय की अवधारणा को लेकर गहन विचार-विमर्श हो रहा है। सामाजिक न्याय आज विशेष रूप से दलितों, स्त्रियों से जुड़ा हुआ मुद्दा है। सामाजिक न्याय के प्रति पाश्चात्य विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किए है। भारतीय परंपरा के अनुसार भी सामाजिक न्याय को लेकर विचारकों ने अपने विचार प्रकट किए है। भारतीय विचारकों की दृष्टि से श्री अरविन्द जो समाज के पिछड़े वर्गों का विकास करके सामाजिक न्याय की बात करते है। श्री अरविन्द कार्ल मार्क्स के विचारों से सहमत रहे है। रविन्द्र नाथ टैगोर समाज में सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता को महत्त्व देते है। भारतीय विचारकों में मानवेन्द्र राय भी व्यक्ति की समानता व भाईचारे की भावना पर बल देते है। भारतीय संविधान के अंतर्गत भी सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए संविधान के तीसरे अध्याय में (अनुच्छेद 14-32) एवं संविधान के चौथे अध्याय में (अनुच्छेद 36-51) तक मौलिक अधिकार एवं नीति निर्देशक सिद्धान्तों द्वारा सामाजिक न्याय की व्यवस्था की गई है।

इक्कीसवीं सदी में सामाजिक न्याय की बात कोई नई बात नहीं है यह बहुत लम्बे अर्से से उठाया गया मुद्दा है जो इक्कीसवीं सदी में सार्वभौमिक चर्चा की विषय बना हुआ है। सामाजिक न्याय के वैचारिक आधार के अंतर्गत महान् विचारक, समाज सुधारक व सामाजिक न्याय के स्तम्भ माने जाने वाले कार्ल मार्क्स जो

सामाजिक न्याय की अवधारणा को आर्थिक आधार पर मानते हैं। कार्ल मार्क्स मानव-मूल्यों एवं अतिरिक्त मूल्यों की समानता व न्याय के पक्षधर रहे है। कार्ल मार्क्स शोषण मुक्त व वर्ग विहीन समाज के पक्षधर रहे है। पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के परिश्रम का लाभ उठाना सामाजिक अन्याय है। कार्ल मार्क्स अर्थ के आधार पर श्रमिकों को सामाजिक न्याय प्रदान करना चाहते थे। भारतीय संविधान के निर्माता डॉ॰ भीमराव अंबेडकर सामाजिक न्याय के पक्षधर रहे है। उनके चिन्तन का प्रमुख विषय ही सामाजिक न्याय की समस्या रही है। डॉ॰ अम्बेडकर समाज के कमजोर वर्गों, दलितों व स्त्रियों को असमानता व शोषण के शिकार से मुक्त करवाना चाहते थे। भीमराव अंबेडकर ऐसे न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भ्रातत्व के सिद्धान्त पर आधारित हो जिसमें जाति-व्यवस्था को लेकर ऊँच-नीच की भावना समाप्त हो। भीमराव अम्बेडकर समाज में दलितों व स्त्रियों की दशा में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा पर बल देते है उन्होंने शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो का नारा देकर सामाजिक न्याय प्राप्त करने की बात कही है।

सामाजिक न्याय के वैचारिक आधार में हिन्दू समाज अनेक प्रकार के रीति-रिवाज, परंपराए व अंधविश्वास फैले हुए है। जिसका अनुकरण कर सामाजिक न्याय से वंचित लोगों को अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था की जड़े गहरे रूप से विद्यमान होने के कारण अन्याय की जड़े भी गहरे रूप से कायम है। भारतीय वर्ण-व्यवस्था के पश्चात् जाति-व्यवस्था का विकास हुआ है। भारतीय संविधान द्वारा जाति के आधार पर भेदभाव व अन्याय के प्रति अधिनियम व अनुच्छेद पारित किए गए है परन्तु भारतीय समाज रूढ़ियों से जकड़ी मानसिकता से उभर नहीं पाया है। वर्तमान में नई सदी के दौरान एक तरफ तो वैश्विक, जनसंचार माध्यमों व विदेशी, बैंक के तहत हमारी पारम्परिक जीवन शैली परिवर्तित हो रही है। परन्तु इक्कीसवीं सदी में जाति-व्यवस्था के बने रहने के कारण से ही अस्पृश्यता आज भी विद्यमान है। भारतीय संविधान के माध्यम से अस्पृश्यता का अंत हो चुका है परन्तु लोगों की मानसिकता में परिवर्तन जातिगत मतभेद को लेकर अपरिवर्तनीय बना हुआ है। वर्तमान में अनेक संगठन, मानवाधिकार, आयोग एवं संस्थान सामाजिक न्याय को प्रदान करने के लिए बने हुए है। परन्तु

फिर भी दलितों व स्त्रियों के प्रति अन्याय हो रहा है। स्त्री संबंधी विचारों में स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदान किए गए मौलिक अधिकार एवं नीति निर्देशक सिद्धान्तों का प्रयोग कर स्त्री सामाजिक न्याय प्राप्त करने में सक्षम हो रही है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री सशक्तिकरण की बात हो रही है जो सामाजिक न्याय की अवधारणा में निहित है। सामाजिक क्षेत्र के अंतर्गत स्त्री आज सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों व परंपराओं को नकारते हुए आगे बढ़ रही है। स्त्री पुरुष की मानसिकता पर निर्भर न रहकर अपनी स्थिति में परिवर्तन ला रही है। सामाजिक न्याय का एक पक्ष आरक्षण भी है जिसमें समाज के पिछड़े लोगों को बराबरी के स्तर पर ला कर समानता दिलाई जाए। जो परम्परागत रूप से कमजोर, दलित व महिलाएं है सदियों से हुए अन्याय की भरपाई के लिए आरक्षण प्रदान कर सामाजिक न्याय प्रदान किया जाता है। आरक्षण का उद्देश्य समाज में सामंजस्य स्थापित करना समाज में कमजोर व पिछड़े वर्गों को न्याय प्रदान करने का एक तरीका अपनाया गया है। जिसकी जड़े जाति-व्यवस्था के कारण सदियों से अन्याय का रूप धारण किए हुई है। सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए आरक्षण के विधि रूपों में जैसे नौकरियों में आरक्षण, सरकारी सेवाओं में आरक्षण, तकनीकी व उच्च शिक्षा में आरक्षण प्रदान कर सामाजिक न्याय प्रदान किया जाता है।

भारत में कहानी लिखने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। प्राचीन काल के धर्म ग्रन्थ ब्राह्म साहित्य में वैदिक, साहित्य पुराण, उपनिषद्, स्मृति व महाकाव्यों में आख्यान व कहानियों की महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। सन् 1900 में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिंदी कहानी का आरम्भ माना जाता है। हिंदी कहानी की विकास यात्रा में प्रेमचन्द के आगमन से समाज के जटिल पक्षों का घोर यथार्थ चित्रण किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी कहानी ने अनेक रूप बदले है जिनका अलग-अलग नामों से नामकरण हुआ समांतर कहानी आंदोलन जो आठवें दशक का आंदोलन माना जाता है। जिसका सूत्रपात कमलेश्वर ने 'सारिका' पत्रिका के सम्पादकीय 'मेरा पन्ना' से किया है। समांतर कहानी के अंतर्गत सामाजिक यथार्थ को प्रकट किया है और एक आम आदमी के जीवन को स्पष्ट किया है। समांतर कहानी में आम आदमी को केन्द्र में रखकर कर कहानी का सृजन किया है। सक्रिय कहानी के सूत्रधार राकेश वत्स है। सक्रिय कहानी आम आदमी के हित के लिए प्रयत्नशील

है एवं शोषण का विरोध करती है। सक्रिय कहानी जनता में जागरूकता पैदा करके पुरानी नैतिकता को समाप्त करने के पक्ष में रही है। शोषित जन समूह के साथ हो रहे अन्याय के प्रति सक्रिय करना एवं व्यापक जन समर्थन प्राप्त करके शोषण से मुक्ति दिलाना सक्रिय कहानी का उद्देश्य है। जनवादी कहानी के अंतर्गत निम्न वर्ग के जीवन संघर्ष को केन्द्र में रखती है। जनवादी कहानी में श्रमजीवी वर्ग, मजदूर वर्ग व किसान वर्ग के प्रति सहानुभूति रखती है। जनवादी कहानी का सर्वाधिक बल पूंजीपतियों व सामंतवादी शक्तियों द्वारा किए जा रहे शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना है। जनवादी कहानी यथार्थवादी दृष्टि पर बल देती है। जनवादी कहानी के पश्चात् शुद्ध कहानी का आरम्भ हुआ जो समकालीन हिंदी कहानी के इतिहास (सन् 1971-2000) तक की कहानी आंदोलनों में विद्यमान है। शुद्ध कहानी आंदोलन संकुचित विचारधाराओं को सुलझाने का प्रयास करती है। शुद्ध कहानी नैतिकता व संस्कृति के ह्रास के विरोध में लिखी गई परन्तु अपने नाम के विपरीत ही स्थापित हुई। अनेक कहानीकारों ने इस अवधि में समांतर कहानी, सक्रिय कहानी, जनवादी कहानी व शुद्ध कहानी को सामाजिक यथार्थ एवं मानवीय संघर्ष को स्पष्ट व्यक्त किया जिससे सामान्य जन के आत्मविश्वास व आकांक्षाओं को जागरूक करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में कहानी विधा में अनेक परिवर्तन सकारात्मक व नकारात्मक दोनों रूप प्रकट हुए है। बीसवीं सदी की हिंदी में जो समस्याएं व्याप्त थी, इक्कीसवीं सदी में वही समस्याएं विकराल रूप लेकर प्रकट हुई है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी विषय सीमित न होकर सभी विषयों के प्रति अपना दृष्टिकोण अपनाया है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में सामाजिक न्याय के अंतर्गत दलितों व स्त्री के अधिकारों को लेकर सामाजिक न्याय व अन्याय के पक्ष में विस्तार से चर्चा हुई है। इक्कीसवीं सदी के युग परिवेश के अंतर्गत मनुष्य के ज्ञान विज्ञान में वृद्धि हुई है। नई सदी में इन्टरनेट, उपग्रह, आधुनिक तंत्र से ज्ञान और सूचना के क्षेत्र में क्रान्ति हो रही है। नई सदी के परिदृश्य में प्रत्येक स्थितियां भी प्रभावित हुई है। प्रत्येक परिस्थितियां शोध प्रविधि के अनुरूप व्यक्त की गई है। इक्कीसवीं सदी की प्रत्येक परिस्थितियाँ देश व समाज को प्रभावित कर पथ-प्रदर्शक का माध्यम भी मानी जाती है। इक्कीसवीं सदी के युग परिवेश में राजनीति विकास के

दौर में समाज का बहुत बड़ा भाग राजनीति के अंतर्गत प्रवेश कर चुका है जो केवल निजी स्वार्थों की पूर्ति पर टिका हुआ है भारतीय संविधान के अंतर्गत सामाजिक न्याय की अवधारणा को ध्यान में न रख कर धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र के कारण संकीर्ण मानसिकता व भ्रष्टाचार में लिप्त है। राजनीति में राजनेताओं द्वारा आपसी मतभेद व स्वार्थों की होड़ में देश की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। नक्सलवाद व आंतकवाद देश की बड़ी समस्याएं है। इक्कीसवीं सदी के समाज में आज व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो चुका है। समाज में गरीबी और बेरोजगारी के साधन बढ़ गए है जिसके प्रभाव से व्यक्ति स्वार्थी बन गया है। वैज्ञानिक तकनीक के मनुष्य को इतना शक्तिशाली बना दिया है। नई सदी में आकर अर्थ-व्यवस्था के अंतर्गत बाजारवाद प्रक्रिया का प्रचलन बढ़ गया है। आज के बाजारवाद की प्रक्रिया में मनुष्य केवल उपभोक्ता बन कर रह गया है। मंहगाई व बेरोजगारी के कारण मनुष्य को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इक्कीसवीं सदी में धार्मिक स्थितियों के अंतर्गत धर्म बहुत अधिक मात्रा में परिवर्तनशील हो चुका है। आज धर्म के नाम पर हिंसा, कट्टरता व भेदभाव उभरकर सामने आती है। समाज में भक्ति की धारा प्रवाहित न होकर धर्म को लेकर अलग-अलग खण्डों में विभाजित हो गया है जिसमें समाज सुधार व एकता की भावना लुप्त हो गई है। वर्तमान में संस्कृति विघटन भी तेजी से चल रहा है मनुष्य अपने सांस्कृतिक मूल्यों व नैतिक मूल्यों की मर्यादा को दिन-प्रतिदिन समेटता चला जा रहा है। युग व परिस्थिति के अनुरूप मनुष्य में संपूर्ण तरीके से परिवर्तन हो गया है।

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में सामाजिक न्याय पर विस्तार से चर्चा की है। हिंदी कहानीकारों में इक्कीसवीं सदी के प्रमुख कहानीकारों को लिया गया है इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों में उर्मिला शिरीष (निर्वासन), एस॰ आर॰ हरनोट (मिट्टी के लोग), मनीषा कुलश्रेष्ठ (कठपुतलियाँ), ज्ञानप्रकाश विवेक (सेवानगर कहा है), सूरजपाल चौहान (नया ब्राह्मण), चित्रा मुद्गल (लपटें), जया जादवानी (मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ काँधे पे अपना हल लिये), सुशीला टाकभौरे (संघर्ष) श्योराज सिंह बेचैन (भरोसे की बहन), अनिता गोपेश (कित्ता पानी), ओमप्रकाश वाल्मीकि (घुसपैठिये) आदि कहानीकार है। जिन्होंने अपनी

कहानियों में सामाजिक अन्याय व न्याय के प्रत्येक पक्ष को उभारा है। जिसमें स्त्री व दलितों की स्थिति को चित्रित किया है। इक्कीसवीं सदी के अनेक कहानीकार अपनी कहानियाँ लिख रहे हैं जिसके अंतर्गत अन्य प्रमुख कहानीकारों का विवेचन भी किया है जिसको विस्तारपूर्वक प्रस्तुत न करके लेखकों व लेखिकाओं के नामों को ही प्रस्तुत किया है।

इक्कीसवीं सदी में सामाजिक न्याय का महत्त्वपूर्ण पक्ष स्त्री परिपेक्ष्य है। भारतीय संविधान में स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए सामाजिक न्याय की अवधारणा में स्त्रियों की समानता व विकास पर बल दिया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद (15) में स्त्रियों के भेदभाव को समाप्त कर समानता का दर्जा दिया गया है। भारतीय कानून व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों के संरक्षण व विकास के लिए अनेक प्रावधान पारित कर नियम बनाए गए है। भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्थापित होने के कारण स्त्री को अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता है जिसके कारण स्त्री के विकास में बाधाएं उत्पन्न होती है। समाज में पुरुष वर्चस्व स्थापित होने के कारण स्त्रियों को समाज में अन्याय का सामना करना पड़ता है। भारतीय संविधान द्वारा स्त्रियों के अधिकारों के प्रति विभिन्न अनुच्छेदों के अंतर्गत अधिनियम पारित होने के बावजूद भी कहीं न कहीं न्याय से वंचित रखा हुआ है। वर्तमान में कन्या भ्रूण हत्या से समानता की स्थिति को दफनाया जा रहा है। भारत सरकार ने भ्रूण हत्या पर रोक लगाने के लिए वर्ष 1994 में 'गर्भावस्था यौन परीक्षण निषेध अधिनियम' पारित किया और कई योजनाएँ लागू की परन्तु समाज में कन्याओं के प्रति मानसिकता कानून के कड़े नियमों के बावजूद भी अपरिवर्तित है। जिससे भारतीय समाज में लिंगानुपात की कमी आई है। इक्कीसवीं सदी में महिला सशक्तिकरण की बात व प्रगति को चारों दिशाओं में उठाया जा रहा है परन्तु लोगों की मानसिकता स्त्रियों को समानता का दर्जा दिलाने के हक में संकोच प्रवृत्ति की है।

वर्तमान समाज में स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण कर अपनी परिस्थितियों में परिवर्तन ला रही है एवं अपने जीवन में विकास पर प्रगति के पथ पर विराजमान है। इक्कीसवीं सदी में कामकाजी स्त्रियों के प्रति भी समाज के लोगों की सकारात्मक सोच नहीं है जिसके कारण स्त्रियों को शोषण का शिकार बनाया जाता है। स्त्रियाँ पढ़-लिख कर

रोजगार के क्षेत्र में आगे बढ़ रही है लेकिन कामकाजी स्त्री की दशा पुरुषों के वर्चस्व के कारण बेहतर नहीं है। जिसके तहत स्त्री घुटन व प्रताड़ना भरी जिन्दगी जीने के लिए विवश है। समाज व परिवार में स्त्री की इच्छाओं व अधिकारों को महत्त्व नहीं दिया जाता है परिवार में या समाज में जन्म से लेकर मृत्यु तक अन्याय का सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम गर्भ में हत्या कर घुटन व प्रताड़ना भरी जिन्दगी से सामना करना पड़ता है। यदि जन्म हो भी जाए तो संपूर्ण जीवन कष्टों व अन्याय से भर दिया जाता है। समानता के नाम पर समाज में स्त्रियों के जीवन से खिलवाड़ किया जाता है। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए स्त्रियों को संपति में हिस्सा दिलवाकर न्याय प्रदान करने का प्रावधान है। परन्तु समाज के लोगों की मानसिकता स्त्रियों को संपति प्रदान करने की नहीं है। समाज स्त्री को सपंति से बेदखल कर सामाजिक न्याय व कानून व्यवस्था के पक्ष में नहीं है। वर्तमान में महिला सशक्तिकरण के अंतर्गत स्त्री शिक्षित होकर परंपरागत दब्बू प्रवृति के आवरण से बाहर निकल रही है जिसने कड़े प्रयासों से अपने अधिकारों की पहचान कर न्याय प्राप्त करने के लिए जागरूक है। शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्त्रियाँ अपनी अलग पहचान बना रही है। जिसमें महिलाएं पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में सभी कार्यों में भूमिका प्रदान कर रही है। परन्तु समाज में स्त्रियों को बराबरी का दर्जा प्रदान नहीं हुआ। समाज में पुरुष को सोच स्त्रियों के प्रति समानता प्रदान करने के पक्ष में नहीं है। इक्कीसवीं सदी में स्त्रियाँ जागरूक होकर अपने अधिकारों का लाभ उठा कर अन्याय के प्रति विरोध करती है। आज समाज में स्त्री अपने अस्तित्व की रक्षा करते हुए अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफल हो रही है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में स्त्री के न्याय व अन्याय पक्ष पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई है परन्तु अभी भी अन्याय अधिक सीमाओं में फैला हुआ है और स्त्री संघर्ष करके कुछ हद तक न्याय प्राप्त कर रही है।

इक्कीसवीं सदी के समाज में दलित संदर्भ सामाजिक न्याय से जुड़ा हुआ है। सामाजिक न्याय की अवधारणा में दलितों के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव किया जाना अपराध माना गया है। दलित वर्ग जो प्राचीन काल से ही शोषित व पीड़ित वर्ग रहा है। भारतीय संविधान में कानून बना देने के कारण भी दलितों को अन्याय का सामना करना पड़ता है। प्राचीन काल की परिस्थितियों के अनुसार

इक्कीसवीं सदी में भी दलित वर्ग को विभिन्न पक्षों के अनुसार समाज में अन्याय व अपमान झेलना पड़ता है। भारतीय संविधान द्वारा 'अस्पृश्यता' का अंत कर दिया है परन्तु 'अस्पृश्यता' के आधार पर भी दलितों के साथ भेदभाव किया जा रहा है। मैला ढ़ोने की प्रथा, शिक्षा के स्तर पर, मानाधिकार के आधार पर, रोजगार के स्तर पर व अंतर्जातीय विवाह के आधार पर वर्तमान में अन्याय का सामना करना पड़ता है। वर्तमान में लोगों की मानसिकता पुरानी परंपराओं में जकड़ी होने के कारण भारतीय संविधान द्वारा बनाए गए कानून व्यवस्था को स्वीकार करने में पक्ष में नहीं है।

समय के साथ-साथ शताब्दियाँ बीत रही है। इक्कीसवीं सदी का समाज भी जाति को ही सर्वोपरि मानता है। वर्तमान समय में परिवर्तन होने से दलित वर्ग भी अपनी स्थिति में परिवर्तन ला रहा है दलित वर्ग शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है एवं संघर्षशील है। सदियों से हुए अन्याय का विरोध कर रहा है। इक्कीसवीं सदी में आकर मनुष्य दिन-प्रतिदिन अपने ज्ञान व विकास में तरक्की कर रहा है। भारतीय संविधान काफी लम्बे अर्से से लिखित रूप में ही विकासशील है। परन्तु समाज के अंतर्गत कानून व्यवस्था को ढ़ालने से ही, उपयोग करने से ही समाज में प्रत्येक व्यक्ति, अमीर-गरीब, विशेषत: स्त्री व दलित सामाजिक न्याय प्राप्त किया है। मनुष्य को भौतिक सुख-सुविधाओं व ज्ञान-विज्ञान के साथ अपनी पुरानी मानसिकता से छुटकारा पाकर ही समाज में समानता स्थापित होने से सही मायने में सामाजिक न्याय है।

उपलब्ध इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी के स्त्री संदर्भ एवं दलित संदर्भ के विश्लेषण के बाद यह कहा जा सकता है कि हिंदी कहानी लेखन हिंदी साहित्य को नए अनुभवों, संदर्भों, नई चेतना एवं सामाजिक न्याय के प्रत्येक पक्ष पर विस्तारपूर्वक चर्चा करके समृद्ध कर रहा है। नई सदी के प्रत्येक क्षेत्र में फैली स्त्री संबंधी समस्याएं बुराईयों, प्रथा एवं अन्याय का चित्रण सामाजिक न्याय को प्राप्त करने में विद्रोह पर उतर आता है। इसी प्रकार ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में दलितों के प्रति उत्पीड़न, शोषण, अपमान, दरिद्रता व अस्पृश्यता को वर्तमान समाज के प्रत्यक्ष रूप में चित्रित है। दलित अन्याय से मुक्ति जाति-व्यवस्था की उन्मूलन से निर्धारित है। स्त्री एवं दलित दोनों ही सामाजिक न्याय के लिए लंबे अर्से से पीड़ित है। समाज की मानसिकता में परिवर्तन ही दोनों के सामाजिक न्याय के प्रति प्रमुख है।